हमारे शिक्षक और लैंगिक संवेदनशीलता

❑ शारदा कुमारी

'महामहिम' भारत की राजधानी दिल्ली का एक जाना माना विद्यालय है जहाँ से जुड़ा एक वाक्या आपको सुनाती हूँ। विद्यालय अनुभव कार्यक्रम के दौरान मुझे इस विद्यालय में प्रतिदिन जाना होता था। मुझे किसी प्रकार की असुविधा न हो, इसके लिए वहाँ के प्रधानाचार्य ने मेरे बैठने की व्यवस्था उस विद्यालय के विज्ञान कक्ष में कर दी। इस कक्षा में मुझे एक बात बहुत ही अटपटी लगी। वह यह कि यहाँ जितने भी विद्यार्थी थे वे सब लड़के ही थे जबकि यह सह-शिक्षा विद्यालय था। अन्य कक्षाओं में लड़के-लड़कियाँ बराबर की ही संख्या में नजर आते थे। उत्सुकतावश मैने संबधित अध्यापक से पूछ ही लिया - ''श्रीमान मुझे आपकी प्रयोगशाला में कभी कोई लड़की नहीं दिखाई दी। क्या इस क्षेत्र की लड़कियों को विज्ञान में बिल्कुल भी रूचि नहीं है? या फिर दसवीं में वे इतने अंक नहीं ला पातीं कि आप उन्हें विज्ञान धारा से जुड़ने का मौका दें।''

''अरे नहीं नहीं। ऐसी कोई बात नहीं।'' उन्होनें बड़ी लापरवाही से उत्तर दिया। ''दसवीं के परीक्षा परिणामों में तो वे ही आगे रहती हैं। अगर दसवीं कक्षा की लड़कियों के उपलब्धि स्तर को देखें तो विज्ञान संबधी विषयों पर उन्हीं का हक बनता है।''

''अच्छा, इसका मतलब लड़कियां ही रूचि नहीं लेती होंगी।'' मैंने उनकी पूरी बात सुने बगैर अपनी प्रतिक्रिया जाहिर की। ''नहीं मैडम, ऐसी बात नहीं कि इस इलाके की लड़कियां बायोलॉजी या फिजिक्स में रूचि नहीं रखतीं। वे तो नए सत्र के आरम्भ में मेरे पीछे ही पड़ जाती हैं कि उन्हें ये विषय चाहिए। यहाँ तक कि उनके माता पिता सिफारिशें तक लेकर आ जाते हैं कि बिटिया को सांइस साइड दिलानी है, पर मैं ही उन्हे डिस्करेज करता हूँ।'' उन्होने आगे बताया, ''मैं उन्हे समझाता हूँ, देखो भई, तुम तो हो लड़कियाँ। दो-चार साल बाद चूल्हा चक्की ही संभालोगी न। फिर क्यों खराब करती हो यह सीट ? किसी लड़के के काम आ जावेगी। बेचारा अपना केरियर बना लेगा।''

इक्कीसवीं सदी में रहने वाले इस विज्ञान अध्यापक के लड़कियों के प्रति यह विचार सुन कर मैं सहम-सी गई। यदि ऐसा ही अध्यापक मैडम क्यूरी को पढा रहा होता तो ? आप सभी ने सुना या पढ़ा ही नहीं बल्कि समझा भी होगा कि शिक्षक मानवता का निर्माता व समाज का शिल्पी है। आपने यह भी जाना होगा कि किसी भी देश के नागरिकों की गुणवत्ता शिक्षा पर निर्भर करती है और शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षक पर। अब ऐसे में शिक्षकों का क्या यही दायित्व बनता है कि वे समाज के एक विशेष वर्ग को मनचाहा विषय लेने से रोकें ?

स्वतंत्रता पूर्व भारत में महिलाओं की शिक्षा को लेकर औपचारिक व अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की यही धारणा थी कि महिलाओं को ऐसी शिक्षा दी जाए जिससे वे सफल गृहिणी, समझदार माँ, त्यागमयी व सहनशील नारी बनें। उनका परिवेश ही कुछ इस प्रकार से होता था कि स्वभावत: वे गणित व विज्ञान जैसे विषयों की अपेक्षा संगीत, नृत्य, गृह सज्जा व पाक कला आदि विषयों की ओर अपना रूझान प्रकट करती थीं और लड़कों से यह उम्मीद की जाती थी कि वे गणित, जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान और भौतिकी आदि विषयों में ही अपना ध्यान लगाऐं। यदि लड़के कला विषयों के प्रति अपनी रूचि प्रदर्शित करने का प्रयास करते भी तो यह संवाद 'अरे पगले क्या लड़कियों वाले विषय ले रहा है। 'बोलकर उनका मजाक बनाया जाता था।

परन्तु आज की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति सर्वथा भिन्न है। आज यह स्वीकार कर लिया गया है कि प्रकृति ने महिला व पुरूष की बनावट में अंतर जरूर किया है परन्तु उन दोनों की रूचियों, रूझानों और ज्ञान क्षमता को लेकर कोई भेदभाव नहीं किया है। लड़के लड़कियों की रूचियों में और शारीरिक व मानसिक क्षमता में जो भी अंतर नजर आते हैं, वे प्रकृति प्रदत्त न होकर उनके सामाजिक व सांस्कृतिक माहौल की देन है। उदाहरण स्वरूप यदि लड़कियों को खेलने-कूदने के अवसर प्रदान ही न किये जाऐं, उन्हें घर की चारदीवारी के बाहर निकलने ही न दिया जाए तो स्वाभाविक है कि उनकी रूचि दौड़ने-कूदने, हाकी, क्रिकेट, कुश्ती जैसे खेलों में होगी ही नहीं।

इस बात से जुड़ा एक प्रसंग याद आ रहा है। मेरे एक मित्र की बेटी का क्रिकेट की तरफ बहुत रुझान था। वह इस खेल की एक कुशल और नामी खिलाड़ी बनना चाहती थी। मित्र ने अपनी बेटी की इच्छा का स्वागत किया और खेल की बारीकियां समझाने के लिए कोचिंग का प्रबंध करवा दिया। वह लड़की जिस मैदान में कोचिंग लेती थी उसके पास ही एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय था। वहाँ के कुछ विद्यार्थी उस लड़की के प्रति अवांछनीय व्यवहार दिखाते। कुछ दिन तो लड़की ने इस व्यवहार को सहा पर कहते हैं

न कि कब तक कोई सहन करे। लड़की ने उस विद्यालय की प्रधानाचार्य से उन विद्यार्थियों के अशोभनीय व्यवहार की शिकायत कर दी। जानते हैं प्रधानाचार्यजी की क्या प्रतिक्रिया थी ? उन्होंने कहा- ''अरे कैसी लड़की हो तुम? भला तुम्हें बैट बाल खेलने की क्या जरूरत ? अरे लड़की हो, घर बैठो। सिलाई कढ़ाई सीखो जाकर।'' उन्हीं के सुर में सुर मिलाते हुए उनके सहयोगी ने कहा ''भई लड़के हैं, इन्हें भला मनमानी करने से कौन रोक सकता है? ये खेलना-कूदना छोड़कर अपने घर शान से बैठो।'' शुक्र है सभी शिक्षकों के विचार इस प्रकार के नहीं होते। नहीं तो पी टी उषा, सुनीता राय या बालसम्मा आदि के उदाहरण हमारे सामने न होते।

स्वांतत्र्योत्तर भारत में विद्यालयी शिक्षा विभिन्न चरणों से गुजरी है। पाठ्यक्रम में स्पष्ट रूप से दिखाई देती लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए विशेष प्रयास किया गया और लड़के व लड़कियों के लिए समान पाठ्यक्रम प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई। इस दिशा में सबसे पहला कदम 1961 में हंसा मेहता समिति द्वारा उठाया गया। इस समिति द्वारा ही यह सुझाव दिया गया कि माध्यमिक स्तर तक गृहविज्ञान विषय लड़के लड़कियों दोनों को ही समान रूप से पढ़ाया जाए। 1964-66 में कोठारी आयोग व 1975 में राष्ट्रीय महिला समिति ने भी लड़के लड़कियों के लिए समान पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्चा की सिफारिश की। उनके अनुसार माध्यमिक स्तर तक सभी विषय समान रूप से पढ़ाने का प्रावधान रखा गया। उसके बाद 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति व 1991 में प्रोग्रेम ऑफ एक्शन ने लड़कियों के प्रति संवेदनशील पाठ्यक्रम का प्रस्ताव प्रस्तुत किया । भारतीय संविधान के अनुसार लिंग के मामले में समानता का अधिकार हम सबका मौलिक अधिकार है । राज्य की संवैधानिक रूप से प्रतिबद्धता है कि वे सुविधावंचित जनसमूहों, जिनमें महिलाएं शामिल हैं, को हर क्षेत्र में समान अवसर प्रदान करें। इन सब बातों का शैक्षिक पाठ्यचर्या पर भी असर होना चाहिए। सैद्धांतिक तौर पर तो बदलाव आए भी हैं पर जरूरत इस बात की है कि यह बदलाव शिक्षकों की सोच में आएं । यदि आज भी वे नारी की क्षमताओं व योग्यताओं का आकलन परम्परावादी दृष्टिकोण के आधार पर करते हैं तो वे नारी जाति ही नहीं वरन मानवता के साथ घोर अन्याय कर रहे हैं । भला ऐसा कहीं आपने देखा या सुना है कि वृक्ष की एक डाली तो फले-फूले और एक डाली को पनपने का अवसर ही न मिले ।

यहीं मुझे एक और वाक्या याद आ रहा है जिसकी चर्चा करना आवश्यक समझती हूं । प्राथमिक विद्यालयों के मुख्य अध्यापक /अध्यापिकाओं का प्रशिक्षण चल रहा था और उसमें मुझे 'लैंगिक समानता' पर एक सत्र लेना था । प्रशिक्षण की पद्धति सहभागिता पर आधारित थी । अत: सभी दिए गए विषय पर अपनी अपनी टिप्पणी दे रहे थे। एक मुख्याध्यापिका की टिप्पणी कुछ इस प्रकार थी - ''प्रात: कालीन सभा में लाइनें बनवाने, कमांड देने का काम हम लड़कों को सौंपते हैं । लड़कियों में भला नेतृत्त्व का गुण कहां ? उनको तो मैं कक्षा-कक्षों की सफाई व साज-सज्जा आदि का काम देती हूं ।'' उनसे मैं सिर्फ इतना ही कह पाई - ''महोदया, शुक्र था कि आपकी शिक्षिकाओं के विचार आप जैसे न थे, वरना आप इस पद पर कैसे आ पाती ?''

इसी प्रकार से कार्य अनुभव के क्रिया-कलापों का चुनाव करते समय भी शिक्षक लड़के-लड़कियों में अंतर करते हैं । बटन टांकना, तुरपाई करना एवं कला संबंधी कार्य लड़कियों से करवाते हैं तथा बागवानी जैसे कार्य लड़कों को सौंप देते हैं। यह हालात तब हैं जबकि हमारे देश में 97 प्रतिशत दर्जी पुरूष ही होंगे जो बटन टांकने से लेकर सिलाई कढाई सभी काम करते हैं। हां, यह जरूर है कि दर्जीगिरी एक व्यवसाय है और उससे आमदनी जुड़ी हुई है और जहां भी आमदनी जुड़ी हुई हो वह कार्य पुरुषों के अधिकार क्षेत्र में आ जाता है । लड़कियों को शारीरिक व मानसिक रूप से कोमल समझना, उनमें नेतृत्व के गुण का अभाव पाना, गणित, विज्ञान व खेलकूद में उनकी रुचि को न समझ पाना, शारीरिक श्रम वाले खेलों के प्रति उनके उत्साह को नजरअंदाज करना विद्यालय में पाठ्य सहगामी क्रिया-कलापों के चुनाव/ निर्धारण में उनके साथ समानता का बर्ताव न करना, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन के समय छात्राओं को जलपान की व्यवस्था, स्वागत-सत्कार सेवा-सुश्रुषा जैसे क्रिया-कलाप सौंपना; यह सब आज भी हमारे विद्यालयों में हो रहा है, भले ही वे शहरी विद्यालय हों या ग्रामीण।

आज जरा अपने मानस को झिंझोड़ कर देखें, क्या यह तर्क संगत है ? लिंग-भेद के आधार पर समानता के अवसर सुलभ हों, इसके लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शैक्षिक अवसरों की समानता और महिलाओं की समानता और सबलीकरण की शिक्षा पर जोर दिया गया है । इसके परिणामस्वरूप पाठ्यचर्यागत कार्यनीतियों में परिवर्तन लाना जरूरी है । अधिक से अधिक बालिकाओं के लिए शिक्षा सुलभ कराने के अतिरिक्त विद्यालयी पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों और उन्हें पढ़ाने की प्रक्रिया में सभी प्रकार के लैंगिक भेदभाव और लैंगिक पूर्वाग्रह मिटाना अत्यंत आवश्यक है । शिक्षक होने के नाते हमें अपने विद्यार्थियों, चाहे वे लड़की हैं या लड़के, दोनों की श्रेष्ठतम विशेषताओं को पहचानना व मानना होगा, साथ ही उनका समान रूप से पोषण करना होगा । जरूरत इस बात की है कि लड़के व लड़की दोनों को ही ध्यान में रखकर ऐसी प्रभावशाली पाठ्यचर्या, कार्यनीति व सीखने-सिखाने के तरीके विकसित व लागू करें जो समान रूप से सक्षम, एक-दूसरे के प्रति संवेदनशील बालक-बालिकाओं की पीढियों का पोषण करें । ◆